लेटर्स पेटेंट अपील

*समक्ष डी. के. महाजन और प्रेम चंद पंडित, न्यायमूर्ति*

मदन सिंह, आदि,—अपीलकर्ता,

*बनाम*

हरियाणा राज्य और अन्य, उत्तरदाता

1972 का उत्तरार्द्ध पेटेंट अपील संख्या 99

16 मई, 1972।

*भूमि अधिग्रहण अधिनियम (1894 का 1)-धारा 4,5क, 6 और 48-धारा 4 (1) की अपेक्षाएं-क्या अनिवार्य हैं-धारा 4 के तहत अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना-क्या धारा 6 के तहत अधिसूचना से पहले होनी चाहिए-धारा 48-भूमि अधिग्रहण से सरकार का वापस लेना-क्या अधिग्रहण की कार्यवाही को फिर से शुरू करने के लिए कोई बाधा उसी भूमि से है।*

*अभिनिर्धारित किया गया कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4 (1) की अपेक्षाएं अनिवार्य हैं। पहली आवश्यकता यह है कि सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण के लिए एक सार्वजनिक उद्देश्य होना चाहिए और इस आशय की एक अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की जानी चाहिए। दूसरी आवश्यकता यह है कि अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद, कलेक्टर को उस अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना उस इलाके में सुविधाजनक स्थानों पर जारी करनी होगी जहां अधिग्रहित की जाने वाली भूमि स्थित है। इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। यदि सरकार अधिनियम की धारा 17 (4) के प्रावधानों का सहारा लेती है, तो धारा 5-ए के प्रावधान जो भूमि-मालिकों को धारा 6 के तहत दिए गए अधिग्रहण स्टैंड और अधिसूचना पर अपनी आपत्तियां दर्ज करने में सक्षम बनाते हैं, सीधे जारी किए जा सकते हैं। धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचना भी एक साथ प्रकाशित की जा सकती है। कानून धारा 4 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के पूर्व प्रकाशन को अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की पूर्व शर्त नहीं बनाता है। अतः यह तथ्य कि अधिनियम की धारा 4 (1) की दूसरी अपेक्षा धारा 6 के अधीन अधिसूचना के पश्चात् संतुष्ट की जाती है, कोई परिणाम नहीं है। (Paras 11 and 12).*

*अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 48 के अधीन, किसी भूमि के अधिग्रहण से वापस लेने के सरकार के अधिकार को मान्यता दी गई है, बशर्ते कि उसने भूमि का कब्जा नहीं लिया है या मामला अधिनियम की धारा 36 के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है। ऐसी वापसी पर धारा 48 की उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह नोटिस के परिणामस्वरूप स्वामी को हुए नुकसान के लिए या उसके अधीन किसी कार्यवाही के लिए अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के अभियोजन में युक्तियुक्त रूप से उपगत सभी खर्चों के साथ देय मुआवजे की राशि का भुगतान करे। यह धारा अधिग्रहण की कार्यवाही को एक बार वापस लेने के बाद उसी भूमि के संबंध में अधिग्रहण कार्यवाही को फिर से शुरू करने की सरकार की शक्ति पर कोई रोक नहीं लगाती है। (Paras 9 and 13)*

*1971 की सिविल रिट संख्या 4616 में माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रेम चंद जैन द्वारा पारित 24 जनवरी, 1972 के आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट के खंड X के अधीन लेटर्स पेटेंट अपील।*

अपीलकर्ताओं की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता *आनंद स्वरूप और अधिवक्ता आर. एस. मित्तल*

प्रतिवादी की ओर से हरियाणा के डिप्टी एडवोकेट जनरल डीएस लांबा और सहायक महाधिवक्ता (हरियाणा) एचएन मेहतानी

## निर्णय

महाजन, जे -यह आदेश 1972 के लेटर्स पेटेंट अपील्स नंबर 90 और 99 का निपटारा करेगा। ये दोनों अपीलें इस अदालत के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ निर्देशित हैं, जिसमें मदन सिंह और अन्य लोगों और कूरा राम और अन्य लोगों द्वारा हरियाणा सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 और 6 के तहत जारी अधिसूचना के खिलाफ दायर दो याचिकाओं को खारिज कर दिया गया है। ये अपीलें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर दो याचिकाओं से उत्पन्न हुई हैं।

(2) प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं: —

(3) 2 सितंबर, 1971 को और 7 सितंबर, 1971 को हरियाणा सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 17 (4) और धारा 6 के साथ पठित धारा 4 के तहत दो अधिसूचनाएं जारी की गईं। कुछ भूमि-मालिकों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर 1971 की सिविल रिट संख्या 3752 में अधिसूचना की वैधता को चुनौती दी। इस याचिका की सुनवाई पी सी जैन, जे। विद्वत न्यायाधीश ने दिनांक 26 अक्टूबर, 1971 और 4 नवंबर, 1971 के अपने आदेशों द्वारा अधिनियम की धारा 17 (4) के अधीन पारित आदेश से संबंधित 7 सितंबर, 1971 की अधिसूचना को पूरी तरह से और 2 सितंबर, 1971 की अधिसूचना के केवल एक भाग को रद्द कर दिया। इस स्थिति का सामना करते हुए, सरकार अधिनियम की धारा 48 (1) के तहत कार्रवाई करने के लिए आगे बढ़ी। पिछली अधिसूचना के तहत भूमि का कब्जा नहीं लिया गया था और इस प्रकार धारा 4 और 6 के तहत नई अधिसूचनाएं जारी की गईं। धारा 4 के तहत अधिसूचना 4 नवंबर, 1971 को जारी की गई थी। धारा 6 के तहत अधिसूचना 5 नवंबर, 1971 को जारी की गई थी। धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना 6 नवंबर, 1971 को दी गई थी। 7 नवंबर, 1971 को सरकार द्वारा भूमि का कब्जा ले लिया गया। यही वर्तमान याचिकाओं का कारण बना।

(4) विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष बड़ी संख्या में मामलों का प्रचार किया गया था। उन सभी से निपटना आवश्यक नहीं है क्योंकि हमारे सामने केवल दो मामले उठाए गए हैं। इसलिए, हम खुद को उन दो मामलों तक ही सीमित रखते हैं।

(5) पहला तर्क जो आग्रह किया गया है वह यह है कि अधिनियम की धारा 4 (1) की आवश्यकताओं में से एक का अनुपालन धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद किया गया था। धारा 4 (1) के प्रावधान अनिवार्य होने के कारण, इसका पूर्ण अनुपालन अधिनियम की धारा 6 के तहत अधिसूचना से पहले होना चाहिए था। ऐसा नहीं होने के कारण, याचिकाकर्ताओं की भूमि के अधिग्रहण की कार्यवाही अमान्य है।

(6) दूसरा तर्क यह है कि धारा 4 और 6 के तहत क्रमशः 2 सितंबर, 1971 और 7 सितंबर, 1971 की पूर्व अधिसूचनाओं को वापस लेना इंगित करता है कि सरकार ने अंततः विचाराधीन भूमि अधिग्रहण का विचार छोड़ दिया था। ऐसा होने के कारण, विवादित अधिसूचना जारी नहीं की जा सकी।

(7) विद्वत एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ पहले विवाद को खारिज कर दियाः-"अब विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या वर्तमान प्रकार के मामले में जहां राज्य सरकार ने धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करते समय धारा 17 की उप-धारा (4) के प्रावधानों का सहारा लिया है और अधिसूचित किया है कि अधिनियम की धारा 5-ए के प्रावधान इस अधिग्रहण के संबंध में लागू नहीं होंगे, क्या अधिनियम की धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले इलाके में अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना जारी करना आवश्यक होगा। मेरे विचार में, ऐसे मामले में, इलाके में धारा 4 के तहत अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना जारी करने से पहले धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी करने से धारा 6 अधिसूचना अमान्य और अवैध नहीं होगी। श्रीमती सोमवंती और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1) में उच्चतम न्यायालय के उनके अधिपत्यों ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 4 और 6 के अधीन अधिसूचना एक साथ की जा सकती है जो निम्नलिखित टिप्पणियों से स्पष्ट हैः -

इन याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं का यह अंतिम और अंतिम तर्क है कि धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचनाएं एक साथ नहीं की जा सकती हैं और चूंकि दोनों अधिसूचनाएं एक ही तिथि यानी 25 अगस्त, 1961 के राजपत्र में प्रकाशित की गई थीं, इसलिए कानून के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है। तर्क यह है कि अधिनियम किसी व्यक्ति से उस संपत्ति को रखने

और उसका आनंद लेने के उसके अंतर्निहित अधिकार को छीन लेता है और इसलिए, राज्य द्वारा मुआवजे का भुगतान करके सार्वजनिक उद्देश्य के लिए ऐसी संपत्ति को छीनने की वैधानिक शक्ति का प्रयोग अधिग्रहण करने का अधिकार देने वाले कानून के प्रत्येक प्रावधान के सावधानीपूर्वक पालन के अधीन होना चाहिए। यह इंगित किया गया है कि धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन सरकार को सबसे पहले यह अधिसूचित करना है कि किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए किसी विशेष भूमि की आवश्यकता होने की संभावना है। इसके बाद धारा 5-ए के तहत भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति को अधिग्रहण पर आपत्ति करने का अधिकार है और ऐसे व्यक्ति को सुनने के बाद पूरे प्रश्न पर अंततः विचार किया जाना चाहिए और सरकार द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए। इसके पश्चात् ही किसी सामान्य मामले में सरकार धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन यह घोषणा करते हुए अधिसूचना जारी करने की हकदार है कि धारा 5-क, उपधारा (2) के अधीन की गई रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करने के पश्चात् उसका समाधान हो गया है कि भूमि किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अपेक्षित है। यह वह क्रम है जिसमें अधिसूचनाएँ बनानी होती हैं। अनुक्रम का पालन करने का कारण यह स्पष्ट करना है कि सरकार ने सभी प्रासंगिक तथ्यों पर अपना दिमाग लगाया है और फिर किसी निर्णय पर आई है या उस मामले में भी अपनी संतुष्टि पर पहुंची है जहां धारा 5-ए के प्रावधानों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। निस्संदेह कानून की अपेक्षा है कि धारा 6 की उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना केवल सरकार के संतुष्ट होने के बाद ही की जानी चाहिए कि किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए विशेष भूमि की आवश्यकता है। निस्संदेह जहां सरकार ने धारा 17 की उपधारा (4) के अधीन यह निदेश नहीं दिया है कि धारा 5-क के उपबंधों को दो अधिसूचनाओं अर्थात् धारा 4 की उपधारा (1) और धारा 6 की उपधारा 1 के अधीन अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं है, वहां भी एक साथ नहीं किया जा सकता है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि जहां कोई आपात स्थिति है जिसके कारण राज्य सरकार अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (4) के तहत निर्देश देती है कि धारा 5-ए के प्रावधानों का अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं है, पूरे मामले, यानी, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि की वास्तविक आवश्यकता पर अनिवार्य रूप से जल्द से जल्द ही विचार किया जाना चाहिए था, जब यह निर्णय लिया गया था कि धारा 5-ए के प्रावधानों के अनुपालन को निलंबित कर दिया जाए। इसलिए, यह समझना मुश्किल है कि ऐसे मामले में दोनों अधिसूचनाएं एक साथ क्यों नहीं की जा सकती हैं। धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना बनाने की पूर्व शर्त है। यदि सरकार, इसलिए, ऐसी अधिसूचना करने का निर्णय लेती है और उसके बाद, दो और निर्णय लेती है, अर्थात्, धारा 5-क के प्रावधानों के अनुपालन को समाप्त करने के लिए और यह भी घोषित करने के लिए कि अधिसूचना में शामिल भूमि वास्तव में एक सार्वजनिक उद्देश्य के

लिए आवश्यक है, तो कानून के किसी भी प्रावधान से कोई विचलन नहीं है, भले ही दोनों अधिसूचनाएं एक ही दिन प्रकाशित की गई हों। हमारे समक्ष मामले में धारा 4 (1) के तहत प्रारंभिक घोषणा 18 अगस्त, 1961 को की गई थी और 19 अगस्त, 1961 को सरकार की संतुष्टि के बारे में एक घोषणा की गई थी, हालांकि दोनों को 25 अगस्त, 1961 के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। प्रारंभिक घोषणा के साथ-साथ बाद की घोषणा दोनों को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित करने के लिए कानून द्वारा आवश्यक है। लेकिन कानून धारा 4 की उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना के पूर्व प्रकाशन को धारा 6 की उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के लिए पूर्व शर्त नहीं बनाता है। जहां अधिग्रहण सामान्य प्रक्रिया का पालन करने के बाद किया जा रहा है, वहां बाद की धारा के तहत अधिसूचना को अनिवार्य रूप से पूर्व धारा के तहत अधिसूचना के बाद प्रकाशित करना होगा क्योंकि ऐसे मामले में धारा 5-ए के तहत प्रक्रिया का पालन दो अधिसूचनाओं के बीच किया जाता है। लेकिन जहां धारा 5-ए रास्ते में नहीं है, उसी दिन उन अधिसूचनाओं को प्रकाशित करने में कोई अनियमितता नहीं है। यदि दोनों अधिसूचनाएँ एक साथ की जा सकती हैं जैसा कि उच्चतम न्यायालय के उनके अध्यक्षों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, तो मैं यह समझने में विफल हूं कि धारा 6 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद धारा 4 के तहत अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना जारी करने से बाद वाला अवैध कैसे हो जाएगा। यह केवल उन मामलों में है जहां अधिग्रहण की सामान्य प्रक्रिया का पालन किया जाना है कि धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी करने से पहले धारा 4 की उप-धारा (1) की दो आवश्यकताओं का पालन किया जाना चाहिए, लेकिन जहां आपातकालीन प्रावधानों का सहारा लिया जाता है, तो, जैसा कि पहले देखा गया था, इलाके में एक सूचना के बाद के प्रकाशन धारा 6 के तहत अधिसूचना को अवैध नहीं बना देगा। मामले के इस दृष्टिकोण में, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि धारा 6 के तहत अधिसूचना अवैध नहीं है क्योंकि यह इलाके में धारा 4 के तहत अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना जारी करने से पहले जारी की गई थी।

(1) ए.आई.आर. 1963 एससी। 151.

(6) दूसरा तर्क निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दिया गया थाः-"मैं पाता हूँ कि विद्वान उप-महाधिवक्ता के तर्क में काफी बल है, कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को इस बिंदु को उत्तेजित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इस संबंध में याचिका में कोई याचिका नहीं ली गई है।

(7) इन टिप्पणियों को करने के बाद, विद्वान न्यायाधीश गुण-दोष के आधार पर भी विवाद पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़े। धारा 48 को नोटिस करने के बाद विद्वान न्यायाधीश की प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैंः- "इस खंड के खाली पढ़ने से, मुझे लगता है कि याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क में कोई योग्यता नहीं है। इस धारा के तहत, किसी भी भूमि के अधिग्रहण से पीछे हटने के सरकार के अधिकार को मान्यता दी गई है, बशर्ते कि (ए) उसने भूमि का कब्जा नहीं लिया है या (बी) मामला अधिनियम की धारा 4 36 के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है। इसके अलावा इस तरह की वापसी पर सरकार से उपधारा (2) के प्रावधानों के तहत नोटिस के परिणामस्वरूप मालिक को हुए नुकसान या उसके तहत किसी भी कार्यवाही के लिए देय मुआवजे की राशि का भुगतान करने की अपेक्षा की जाती है, साथ ही अधिनियम के तहत कार्यवाही के अभियोजन में उचित रूप से किए गए सभी खर्चों का भुगतान करने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि किसी भूमि के अधिग्रहण से पीछे हटने की सरकार की शक्ति पर लगाई गई रोक दो मामलों में है, अर्थात् (i) जहां कब्जा लिया गया है या (ii) जहां मामला धारा 36 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है। श्री आनंद सरूप, विद्वान अधिवक्ता के ने तर्क दिया कि उपधारा (2) की भाषा, जो स्वामी को प्रतिकर और लागत का भुगतान करने का उपबंध करती है, स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि धारा 48 के अधीन केवल वे मामले शामिल हैं जिनमें सरकार की ओर से अधिग्रहण कार्यवाहियों को पूर्ण रूप से वापस लिया गया है, लेकिन मैं पाता हूं कि ऐसा कोई निष्कर्ष उपधारा (2) की भाषा से नहीं निकाला जा सकता है, जो मेरे विचार से, उन मामलों में मालिकों के हितों की रक्षा के लिए अधिनियमित किया गया है जहां सरकार अधिग्रहण से वापस लेने का विकल्प चुनती है, नोटिस के परिणामस्वरूप मालिक को हुए नुकसान के लिए देय मुआवजे का भुगतान या अधिनियम के तहत कार्यवाहियों में उचित रूप से किए गए सभी खर्चों के साथ किसी भी कार्यवाही का भुगतान करके। धारा 48 अधिग्रहण की कार्यवाही को एक बार वापस लेने के बाद उसी भूमि के संबंध में अधिग्रहण कार्यवाही को फिर से शुरू करने की सरकार की शक्ति पर कोई रोक नहीं लगाती है। मेरे इस निष्कर्ष में मैं बृज नाथ सरीन बनाम उत्तर प्रदेश सरकार (2) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक खंड पीठ के फैसले और आंध्र उच्च न्यायालय के एकल पीठ के फैसले बनाम हरिहर प्रसाद बनाम के जगन्नादन और एक अन्य मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक खंड पीठ के फैसले का समर्थन करता हूं (3). यह देखा जा सकता है कि कोई अन्य सामग्री-यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर नहीं रखी

गई है कि धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना को वापस लेने में सरकार की कार्रवाई किसी भी शक्ति के दुरुपयोग का परिणाम थी। इस प्रकार मेरा मानना है कि धारा 4 के तहत अधिसूचना को वापस लेने और 4 नवंबर, 1971 को उसी धारा के तहत एक और अधिसूचना जारी करने की सरकार की कार्रवाई पूरी तरह से कानूनी है और इसमें कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है।

(3) ए आई आर 1955 आंध्र 184

(8) अपीलार्थियों के विद्वान वकील श्री आनंद स्वरूप ने हमारे समक्ष इन दलीलों का आग्रह किया है। उन्हें विस्तार से सुनने के बाद, हमारा विचार है कि इनमें से किसी भी विवाद में कोई भी योग्यता नहीं है।

(9) धारा 4 (1) की अपेक्षा निस्संदेह अनिवार्य है। आवश्यकता यह है कि सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण के लिए एक सार्वजनिक उद्देश्य होना चाहिए और इस आशय की एक अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की जानी चाहिए। दूसरी आवश्यकता यह है कि अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद कलेक्टर को उक्त इलाके में सुविधाजनक स्थानों पर उस अधिसूचना के सार की सार्वजनिक सूचना जारी करनी होती है, यानी वह इलाका जहां अधिग्रहित की जाने वाली भूमि स्थित है। इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा कर लिया गया है। लेकिन तर्क यह है कि धारा 6 के तहत एक अधिसूचना जारी होने के बाद बाद की आवश्यकता को पूरा किया गया था और इस प्रकार यह आग्रह किया जाता है कि अधिनियम की धारा 4 (1) की आवश्यकता का पूर्ण अनुपालन नहीं किया गया था। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान वकील धारा 5-ए और धारा 6 पर निर्भर करता है, जिसे अधिनियम की धारा 4 के साथ पढ़ा जाता है। उनके अनुसार, इन तीनों प्रावधानों की योजना यह है कि पहले धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जारी की जानी चाहिए, उसके बाद 30 दिन बीत जाने चाहिए ताकि भूमि मालिक अपनी आपत्तियां दर्ज कर सकें और फिर ही धारा 6 के तहत एक अधिसूचना जारी की जा सके। कोई अपवाद नहीं हो सकता। इसे ले जाया गया।- जहां तक यह विवाद है बशर्ते कि सरकार ने अधिनियम की धारा 17 (4) के तहत कार्य करने का निर्णय नहीं लिया था जो निम्नलिखित शर्तों में हैः -

17 (4) किसी ऐसी भूमि की दशा में, जिस पर समुचित सरकार की राय में उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंध लागू होते हैं, समुचित सरकार यह निदेश दे सकेगी कि धारा 5-क के उपबंध लागू नहीं होंगे और यदि वह ऐसा निदेश देती है तो धारा 4, उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन के पश्चात् किसी भी समय भूमि के संबंध में धारा 6 के अधीन घोषणा की जा सकेगी।

जिस क्षण सरकार ने अधिनियम की धारा 17 (4) का सहारा लिया, धारा 5ए के प्रावधान समाप्त हो गए। यह भी ध्यान देने योग्य है कि विद्वान वकील का तर्क श्रीमती सोमवंती बनाम पंजाब राज्य (1) और खुब चंद बनाम राजस्थान राज्य में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के विपरीत होगा। (4). सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट शब्दों में निर्धारित किया गया है कि धारा 4 और 6 के तहत अधिसूचनाओं को एक साथ प्रकाशित किया जा सकता है। यदि यह सही है, और निस्संदेह यह सही है क्योंकि इसमें उच्चतम न्यायालय की मुहर है, तो यह आवश्यक रूप से इस प्रकार है कि धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी होने से पहले धारा 4 की दूसरी आवश्यकता का अनुपालन नहीं हो सका था। खुब चंद के मामले (4) (उपर्युक्त) में उच्चतम न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियों को लाभ के साथ उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें उनके प्रभुओं ने भी अपने पहले के निर्णय पर विचार किया था। "श्रीमती सोमवंती बनाम पंजाब राज्य (1) (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय का निर्णय भी मुद्दे से परे है। उसमें यह तर्क दिया गया था कि धारा 6 के तहत अधिसूचना को धारा 4 के तहत अधिसूचना का स्थान लेना चाहिए और इसे राजपत्र के उसी अंक में कानूनी रूप से प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। उस तर्क पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने कहाः 'हमारे समक्ष मामले में धारा 4 (1) के तहत प्रारंभिक घोषणा 18 अगस्त, 1961 को की गई थी, और 19 अगस्त, 1961 को सरकार की संतुष्टि के रूप में एक घोषणा की गई थी, हालांकि दोनों को 25 अगस्त, 1961 के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। प्रारंभिक घोषणा के साथ-साथ बाद की घोषणा मदन सिंह आदि बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य (महाजन जे) है, दोनों को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित करने के लिए कानून द्वारा आवश्यक है। लेकिन कानून धारा 4 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के पूर्व प्रकाशन को धारा 6 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं बनाता है। उक्त आधार पर तर्क को खारिज कर दिया गया था। इस निर्णय का हमारे सामने उठाए गए मुद्दे पर भी कोई असर नहीं है। वास्तव में, इस न्यायालय द्वारा निर्णय के दौरान की गई निम्नलिखित टिप्पणी, कुछ हद तक, प्रत्यर्थी के तर्क के खिलाफ जाती हैः

"धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना बनाने की पूर्व शर्त है।"

वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने, जैसा कि हमने पहले व्यक्त किया है, उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि सार्वजनिक सूचना का प्रावधान अनिवार्य है, लेकिन इस आधार पर आपत्ति को अस्वीकार कर दिया कि इसमें देरी हुई थी। हमें उक्त तर्क की सराहना करना मुश्किल लगता है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां एक पक्षकार, जिसने खुद को एक न्यायाधिकरण के न्यायशास्त्र के समक्ष प्रस्तुत किया था, ने अधिकारिता की कमी की याचिका उठाई थी जब

निर्णय उसके खिलाफ गया था, लेकिन यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलकर्ताओं ने शुरू से ही न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाया था और कार्यवाही में भाग लेने से इनकार कर दिया था। हालांकि धारा 4 के तहत अधिसूचना 14 फरवरी, 1957 को राजस्थान राजपत्र में प्रकाशित की गई थी, पुरस्कार संख्या 1 11 दिसंबर, 1959 को और पुरस्कार संख्या 2 27 जून, 1960 को किया गया था। अपीलार्थियों का कहना है कि उन्हें पता चला कि पुरस्कार 15 सितंबर, 1960 को ही दिए गए थे और उन्होंने 26 अक्टूबर, 1960 को याचिका दायर की थी। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने से अपीलार्थियों को रोकने के लिए इतनी अत्यधिक देरी हुई थी।

4) ए आई आर 1967 एस सी 1074

(12) श्री आनंद स्वरूप के तर्क को स्वीकार करना और अन्यथा अभिनिर्धारित करना प्रभावी रूप से उच्चतम न्यायालय के निर्णय को निरस्त कर देगा।श्री आनंद स्वरूप ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, उसे स्वीकार किए जाने पर कोई भी निर्णय हमारे संज्ञान में लाने में असमर्थ रहे हैं।

इसके विपरीत, निम्नलिखित निर्णय श्री आनंद स्वरूप के तर्क को पलटते हुए हमने जो दृष्टिकोण अपनाया हैः-(1) खेमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (5) और (2) मारिया रोज़ल डी रोज़, बनाम तमिलनाडु राज्य, (6)

यह विवादित नहीं है, जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है, कि धारा 4 (1) की अपेक्षाओं को पूरा कर लिया गया है। एकमात्र विवाद यह उठाया गया था कि धारा 4 (1) की दूसरी अपेक्षा को धारा 6 की अधिसूचना जारी होने के बाद पूरा किया गया था। इससे कोई फायदा नहीं होता। ऊपर दर्ज किए गए कारणों के लिए, हम श्री आनंद स्वरूप द्वारा दिए गए पहले विवाद के लिए सिद्धांत या अधिकार में कोई वारंट नहीं देखते हैं। हम तदनुसार उसी का प्रतिकार करते हैं।

(13) जहां तक दूसरे विवाद का संबंध है, विद्वत एकल न्यायाधीश ने राज्य के विद्वत अधिवक्ता की प्रारंभिक आपत्ति को इस संक्षिप्त आधार पर बरकरार रखा कि यह विवाद याचिका में आगे नहीं बढ़ाया गया था। हालाँकि, विद्वान एकल न्यायाधीश गुण-दोष के आधार पर विवाद से निपटने के लिए आगे बढ़े। हम पहले ही उन कारणों को बता चुके हैं जो विद्वत एकल न्यायाधीश के पास गुण-दोष के आधार पर उस विवाद को अस्वीकार करने के लिए प्रबल थे। हम उन कारणों से पूरी तरह सहमत हैं और हमारे लिए इसे फिर से दोहराना जरूरी

नहीं है।

(14) ऊपर अभिलिखित कारणों से, ये अपील विफल हो जाती हैं और खारिज कर दी जाती हैं, जिसमें लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होता है।

(15) मैं सहमत हूं कि इन अपीलों को खारिज कर दिया जाए, लेकिन लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

बी एस जी

*अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।*

अवीषेक गर्ग
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
हिसार, हरियाणा